133.	हिना वर्मा	भारतीय गणतंत्र तथा पर्यावरण का यथार्थ : एक समीक्षा	66
134.	प्रा.विकास सुभाष नालकर	शाश्वत विकासामध्ये लोकशाहीवर प्रसारमाध्यमांचा पडणारा प्रभाव	69
135.	डॉ. सुरेश त्रिं. सामाले	शाश्वत विकासची संकल्पना आणि अंमलबजाणी	72
136.	प्रा. डॉ. लक्ष्मण फुलचंद शिराळे	जैवविविधता आणि शाश्वत विकास	76
137.	डॉ. सुखदेव एस. उंदरे	सतत विकास एवंम् जीवन के अस्तित्व कि निर्भरता	80
138.	प्रा. डी. जी. कापुरे	मानवी जीवनाचा ऐतिहासिक आढावा व पर्यावरण	83
139.	प्रा. डॉ. बिराजदार एस.एम.	पर्यावरण बदल आणि शेती उत्पादन	87
140.	डॉ. राजेंद्र ठाकर श्री. अनिल एम. वळवी	निसर्ग जाणीवा आणि आदिवासी साहित्य	90
141.	डॉ.सोमनाथ विष्णु काळे	भारतातील जलसिंचन व शेतीउत्पादकता : एक दृष्टीक्षेप	94
142.	डॉ. भगवान सुरेश मनाळ	नैसर्गिक संसाधने आणि शाश्वत विकासापुढील आव्हाने	98
143.	अशोकराव नारसिंगराव चित्ते	भारतातील कृषी विपणन व्यवस्था आणि नवीन कृषी कायदा 2020	103
144.	Telsang Hanamant Bhimrao	नैसर्गिक साधनांचे वर्गीकरण:यात्रा-उत्सव काळातील पर्यावरण पूरक संदेश	108
145.	डॉ.केरबा कांबळे	लातूर जिल्ह्यातील याजा केंद्राच्या मोजमाप करण्याच्या पध्दतीचा भौगोलिक अभ्यास	112
146.	प्रा. निलेश दशरथ राऊत	नैसर्गीक साधनसंपदा आणि शाश्वत विकास	113
147.	प्रा. एन.बी. एकिले प्रो.डॉ.सदानंद भोसले	इक्कीसवीं सदी के प्रतिनिधि उपन्यासों में पारिस्थितिकी विमर्श	116
148.	प्रा. सीमा व्ही. काळणे	पर्यारणातील नैसर्गीक संपदाचा ऱ्हास मानवी विकासास घातक	120
149.	विश्वास बंडू सुतार	इंद्रजित भालेराव यांच्या कवितेतील निसर्ग	123
150.	सौ. रोहिणी गुरूलिंग खंदारे	पर्यावरण का हिंदी साहित्य में महत्त्व	129
151.	डॉ. खंडेराव शिंदे	राजर्षी शाहू पूर्व काळातील कोल्हापुरातील शैक्षणिक विकास (सन १८४८–१८९४)	133

इक्कीसवीं सदी के प्रतिनिधि उपन्यासों में पारिस्थितिकी विमर्श

प्रा. एन.बी. एकिले,
सहायक प्राध्यापक पीएच.डी—शोधार्थी

प्रो.डॉ.सदानंद भोसले
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे

भारतीय साहित्य, समाज और सांस्कृतिक चिंतन की परम्परा में पारिस्थितिकी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। साहित्य की कोई भी विधा रही हो पारिस्थितिकी उसमें विद्यमान रही है। हिंदी साहित्यकारों ने हमेशा प्रकृति से प्रेरणा ग्रहण की है। किंतु वर्तमान दौर में मनुष्य की भोगवादी दृष्टि ने विकास एवं प्रगति के नाम पर पारिस्थितिकी का व्यापक ह्रास किया है। जिस प्रकृति की गोद में मनुष्य ने जन्म लेकर आगे बढ़ना सीखा है, आज वही प्रकृति मानव के द्वारा नष्ट की जा रही है। आजादी के बाद से ही दिन—प्रति—दिन आधुनिकीकरण, नगरीकरण और औद्योगिकरण के नाम पर पारिस्थितिकी को नष्ट किया जा रहा है। प्रकृति मनुष्य जीवन का प्रधान अंक होते भी आज विकास और उपभोग की लालसा में मनुष्य पारिस्थितिकी का अंधाधुंध दोहन कर प्राकृतिक संरचना के साथ खिलवाड़ कर रहा है। जिससे पारिस्थितिकी संतुलन निरंतर बिगड़ता जा रहा है, पारिस्थितिकी प्रदूषण से समग्र विश्व के सामने विकट समस्या उत्पन्न हो रही है।

पारिस्थितिकी चिन्तन से तात्पर्य है, प्रकृति के प्रत्येक प्राणी के जीवन—क्रम में संतुलन लाना। वर्तमान समय का जो पारिस्थितिक चिन्तन है वह सिर्फ मनुष्य पर ही केन्द्रित नहीं है बल्कि संसार के समस्त जीव—जन्तु के अस्तित्व या संरक्षण पर विचार करता है। आधुनिक युग की पारिस्थितिकी चेतना मनुष्य केंद्रित है तो समकालीन परिस्थितिकी चेतना व्यवस्था केंद्रित है। प्रसिद्ध उत्तर आधुनिक साहित्यिक विमर्शक अजय तिवारी लिखते हैं कि ''आज के पर्यावरणवादी सरोकारों ने हमें सचेत कर दिया है कि प्रकृति का विनाश करके मनुष्य भी सुरक्षित नहीं रहेगा। पानी की तंगी, पर्यावरण का प्रदूषण, बढ़ती गर्मी, पिघलती बर्फ आदि मनुष्य समाज के लिए नहीं ब्रम्हाण्ड के समस्त जीवन—जालों और वनस्पतियों के लिए ख़तरे हैं।''[1]

पारिस्थितिकी संकट अपने आप में एक बहुत ही विस्तृत विषय है। जल, जमीन से लेकर मानव, मानवेतर समस्त जगत पारिस्थितिकी का अंग है। सन् १९६२ ई में रेचल कर्सन के द्वारा लिखित 'साइलेन्ट स्प्रिंग' का प्रकाशन हुआ और यही से साहित्य और पारिस्थितिकी के अंतर्संबधों का प्रस्थान माना जाता है। 'साइलेन्ट स्प्रिंग' में औद्योगिकीकरण के प्रदूषण से किस प्रकार प्रकृति की विभिन्न प्रजातियाँ नष्ट हो रही है तथा पारिस्थितिकी का संतुलन किस प्रकार ध्वस्त हो रहा है, इसका चित्रण बड़े प्रभावशाली रूप में चित्रित किया है। डी.डी.टी. जैसा विषैले कीटकनाशक किस प्रकार पारिस्थितिकी को नष्ट कर रहा है, उसकी चिन्ता 'साइलेन्ट स्प्रिंग' का प्रतिपाद्य विषय है। इसके अंतर्गत पारिस्थितिकी के संरक्षण की मांग करते हुए ग्रीन पीस, अर्थ फेस्ट, ट्रेन्डस् ऑफ अर्थ जैसे संगठन सामने आये है।

महात्मा गांधी ने 'हिन्दस्वराज्य' के माध्यम से और उनके शिष्य जे.सी. कुमरप्पा ने पाश्चात्य ढंग से विकास के मार्ग का विरोध किया है। सन् 1970 का 'सैलेंटवैली संरक्षण कानून' और उत्तर भारत का 'चिपको आंदोलन' दोनों भारत में प्रत्यक्ष पारिस्थितिकीय चर्चा के कारण बने हैं। सन् 1990 के प्रारंभ में ही भारत में आर्थिक उदारीकरण और भूमंडलीकरण का दौर शुरू हुआ। भूमण्डलीकरण की रफ्तार के अनुपात में पारिस्थितिकी ह्रास की मात्रा भी बढ़ती गई है। अकाल, सूखा, बाढ़, जलवायु परिवर्तत आदि कई रूपों में पारिस्थितिकी दोहन के लक्षण सामने आने लगे हैं। आज हिंदी साहित्य के इतिहास में पारिस्थितिकी विमर्श दस्तक दे रहा है। पारिस्थितिकी संकट की समस्या पर लिखने वाले हिंदी के समकालीन उपन्यासकारों में नासिरा शर्मा, कमलेश्वर, भालचंद्र जोशी, अलका सरावगी, रत्नेश्वर सिंह, संजीव, महुआ माजी, कुसुम कुमार, एस.आर. हरनोट, नवीन जोशी, अभिमन्यु अनंत आदि अनेक लेखकों का नाम शामिल है।

इक्कीसवीं सदी के हिंदी साहित्य में कई साहित्यिक रचनाएँ पारिस्थितिकी संकट को अभिव्यक्त कर रही है। वर्तमान समय की पूँजीवादी व्यवस्था, औद्योगिकरण और भूमंडलीकरण आदि के कारण प्राकृतिक पारिस्थितिकी पर, उस पर होनेवाले अतिक्रमण पर हिंदी उपन्यासकारों ने चिन्ता व्यक्त की है। प्रकृति का सबसे महत्वपूर्ण उपादान है जल जो भोगवादी विकास व्यवस्था के कारण आज सबसे अधिक प्रदूषित हुआ है। भालचंद्र जोशी कृत 'प्रार्थना में पहाड़' उपन्यास में प्रदूषित नदी के प्रति चिंता प्रकट की है। प्रस्तुत उपन्यास में भिताड़ा गाँव के पहाड़ी आदिवासियों के जीवन का चित्रण किया है। भिताड़ा गाँव के नजदीक एक बहुत बड़े कारोबारी मिस्टर बजाज की शराब की फैक्ट्री है, जिसका वेस्ट लिक्विड़ जो प्राणघातक

PRINCIPAL
Shivaji College of Arts, Commerce
& D.S.Kadam Science College,
GADHINGLAJ (Dist.Kolhapur)

अल्कोहोल है। वह प्रति वर्ष पंद्रह या सोलह जून को नदी में छोड़ दिया जाता है ताकि बारिश के पानी के तेज बहाव में यह सारा लिक्विड बह जाए। इस बार भी समय पर बारिश होती तो किसी को कुछ पता नहीं चलता किन्तु इस बार अनुमानित समय पर बारिश नहीं हुई और नदी का पानी वेस्ट लिक्विड के कारण इतना जहरीला हुआ कि जिससे नदी के तट पेपर बसे हुए गाँव के अधिकांश मनुष्य और पशु–पक्षी मौत का शिकार बन गए। जंगल और नदी के किनारे मनुष्य और पशु–पक्षियों की लाशे इधर–उधर बिखरकर पड़ी थी। मृत लोगों की लाशे जलायी जाती है, लेकिन नदी में और नदी के किनारे दम तोड़नेवाले जानवरों की लाशे जगह पर ही सड़ने लगी थी। जिससे पुरे गाँव में दुर्गंधी फेल जाती है। मरे हुए जानवरों से संक्रमित बीमारी का खतरा बड़ जाता है। अत: में गाँव में सिर्फ रतन और रूपा दो ही लोग जिंदा रहते हैं। पूरा गाँव नदी का जहरीला पानी पीकर या संक्रमित बीमारी की चपेट में आकर मरते हैं। लेखक लिखते हैं ''वहाँ नीचे घाटी के नीचे, नदी के किनारे पर आदिवासियों का गाँव बसा है। फैक्ट्री के चौकीदार ने मिस्टर शुक्ला को बताया कि गाँव में तबाही आ गई है। कई जानवर, बच्चे, बुढ़े, जवान.... जिसने भी उस नदी का पानी पिया, जिन्दा नहीं बचा है।''[2] स्पष्ट है कि लेखक ने नदी में बड़े स्तर पर फैलते प्रदूषण पर अपनी चिंता जाहिर की है। मुख्यत: विकास के मूल में ही असमानता की खाई छिपी हुई है। क्योंकि जहाँ–जहाँ विकास का चक्का घूमा उसने वहाँ के मूल निवासियों को उनके जल, जंगल और ज़मीन से खदेड़कर हाशिए पर पटक दिया और विकास का संपूर्ण सृजन पूंजीपतियों की सेवा में अर्पण किया है।

आज हमारा देश पाणी के भारी संकट का सामना कर रहा है। यह संकट जो साल–दर–साल और दशक–दर–दशक बढ़ता ही जा रहा है। इसका मुख्य कारण है जल संचयन करनेवाले हमारे सरोवरों एवं नदियों को हमारी स्वार्थी एवं लालसी पीढ़ी ने नष्ट कर दिया है। आज नदी–नाले, कुएँ सुख रहे हैं। भालचंद्र जोशी लिखते है, ''पानी भी वे सावधानी और कंजूसी से पी रहे थे क्योंकि कुएँ का पानी कभी भी खत्म हो सकता था।''[3]

संजीव के द्वारा लिखित उपन्यास 'रह गई दिशाएँ इसी पार' जीव विज्ञान की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर लिखा गया है। इस उपन्यास में लेखक ने एक साथ अनेक मोर्चे खोले हैं, जिसमें टैलीपैथी, लिंग परिवर्तन, सरोगेट मातृत्व, जींस हारमोन्स, व्यक्तित्व परिवर्तन, जीव–जन्तू और समुद्री प्रदूषण आदि का समावेश है। प्रस्तुत उपन्यास में संजीव ने मत्स्य उद्योग में लगी बहुराष्ट्रीय कंपनियों और सीमांत मछुआरों के बीच के संघर्ष को चित्रित किया है। आज पुरे देश के जल, जंगल, जमीन, पहाड़ नदी और प्राकृतिक संपदा को बेरहमी से छीनकर बेचा जा रहा है। उसी प्रकार आठ हजार किलोमीटर सागर तट के अधिकारों को भी स्थानीय मछुआरों से छीनकर बहुराष्ट्रीय कंपनियों को बेचने की साजिश की जा रही है। प्रकृति के संसाधनों पर कब्जा किया जा रहा है। संजीव ने प्रस्तुत उपन्यास में इसी समस्या को व्यापक स्तर पर उठाया है। वे चेतावनी देते हुए लिखते है ''समुद्र में क्या प्रमाण है कि कौन कहां तक आया... इसलिए प्रतिरोध, पूंजी और विकल्प तीनों चाहिए, इसीलिए एकता चाहिए, सहकारिता चाहिए। जिस तरह पूरे देश के जंगल, पहाड़, नदी जमीन और संपदा को छीनकर बेचा जा रहा है, उसी तरह हमारे आठ हजार किलोमीटर सागर तट के अधिकारों को हमसे छीनकर बड़ी कंपनियों को बेच दिया जाएगा। अब भी वक्त है आप चेत जाइए।''[4]

आज औद्योगिकरण, आधुनिकीकरण और सुंदरीकरण के नाम पर समग्र विश्व का समुद्री वातावरण खतरे में पड़ा है। वर्तमान समय में समुद्र एक डस्टबिन हो गया है। प्लास्टिक का कचरा, रासायनिक अवशेष, कच्चा तेल, मोहार उद्योग निर्माण, पर्यटन उद्योग, फिल्म उद्योग, बड़ी–बड़ी कंपनियाँ आदि सभी का कचरा समुद्र में छोड़कर उसे प्रदूषित किया जा रहा है। जिससे समुद्र की मछली, अन्य जीवों और पारिस्थितिकी तंत्र के लिए बहुत बड़ा संकट निर्माण हुआ है। संजीव लिखते हैं– ''समुद्र एक डस्टबिन हो गया है। कोस्टल रेगुलेटरी जोन पांच सौ किलोमीटर का। सागर तट से पाँच सौ मीटर के अंदर आप कोई निर्माण कार्य नहीं कर सकते लेकिन इसका उल्लंघन सर्वत्र है, खुद सरकार के हाथों ही....। आप यहां ही देख लें, हारबर से भीमली तक विकास आधुनिकीकरण और सुंदरीकरण के नाम पर सरकार ने जगह–जगह वायोलेट किया है। दूसरे, स्टील प्लांट, विद्युत उत्पादन और दूसरी इंडस्ट्रीज का कचरा कहां गिरेगा तो समुद्र में! पूरे शहर का कचरा कहां गिरेगा तो समुद्र में मोटार निर्माण उद्योग, पर्यटन उद्योग, फिल्म उद्योग आ रहे हैं। इनका कचरा भी समुद्र में ही आयेगा। मछलियाँ जिंदा रहें तो कैसे? मछलियां मरेंगी तो मछुआरे मरेंगे।''[5] स्पष्ट है कि समुद्र मछली, अन्य जीवों और पारिस्थितिकी तंत्र के लिए घर है और आज उसी घर को प्रदूषित किया जा रहा है।

प्रकृति और मानव का संबंध अनादिकाल से है। लेकिन आधुनिक युग में मानव इस संबंध को भूल गया है। मानव और प्रकृति के संबंध में बड़ी खाई उत्पन्न हुई है। इसके फलस्वरूप मानव सहित जगत के सभी जीव–जन्तुओं को अनेकानेक पारिस्थितिकीय संकट भोगने पड़ते हैं। बाढ़, सूखा, अकाल, आँधी, त्सुनामी, बादलों का फटना, भूस्खलन आदि सब मानव निर्मित विभीषिकाएँ है। यह प्रकृति पर मानव के अनैतिक दखल का अंजाम हैं। हिमाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री शांता कुमार ने अपने उपन्यास 'वृन्दा' में बड़े ही प्रभावशाली ढंग से एक आंचलिक प्रेम कथा के माध्यम मे पारिस्थितिकीय चिंता को चित्रित किया है। लेखक ने स्वयं अपनी आँखें से प्रकृति के इस भयंकर विनाश को देखा था यही कारण है कि उपन्यासकार का चित्रण अत्यंत सजीव और मर्मस्पर्शी हुआ है। लेखक उपन्यास की भूमिका में लिखते हैं– ''दो–तीन बार प्रदेश में कुछ स्थानों पर भयंकर वर्षा हुई। उसे अब 'बादल फटना' कहने लगे हैं। एकदम अचानक इतना पानी बहा कि पूरे का पूरा गांव उसकी लपेट में बह गया। मैं देखने गया। उस सर्वनाश को देखकर दिल दहल गया था। पानी के बहाव में तीन मंजिलें पक्के मकान नींव से उखाड़ कर कहीं दूर बिखरें पड़े थे। टनों वजन वाले पत्थर दीवारें तोड़कर कहीं के कहीं पहुंच गए थे। उस दृश्य को देखकर यह सोच पाना कठिन था कि दो ही दिन पहले वहाँ हंसता–खेलता गांव बसा था। मिट्टी व पत्थर मिले पानी के तेज बहाव के तूफान ने देखते–देखते पूरे गांव को श्मशान बना दिया था। बातचीत में कुछ वृद्ध लोगों ने बताया कि बादल फटने की यह घटनाएँ पूराने समय में नहीं होती थीं। जंगल कटे, धरती नंगी हो गई, मिट्टी का स्खलन बढ़ा, प्रकृति छलनी हुई तो अब यह प्रकोप होने लगे हैं।''[6] लेखक प्रकृति के चीरहरण से क्षुब्ध है। वर्तमान युग में विकास के नाम पर प्रकृति के नाम पर प्रकृति के साथ हो रहे खिलवाड़ की चुभन ही प्रस्तुत उपन्यास लेखन की प्रेरणा रही है। प्रकृति ने करोड़ो सालों में एक अनुशासन और नियंत्रण की व्यवस्था बनाई थी जिसे आज यह मानकर बिगाड़ दिया है कि हम इसका विकल्प बन सकते हैं। गम्भीर बात यह है कि प्रकृति का यह नया संतुलन मानव जीवन के संतुलन को बिगाड़ रहा है। लेखक संपूर्ण मानव जाति को चेतावना देते है कि मानव जितनी जल्दी इस बात को समझ ले उतना ही अच्छा होगा अन्यथा हम सभी जानते हैं कि प्रकृति अपना बदला लेती है तो मानव का उस पर कोई वश नहीं चलता।

वर्तमान युग में जल समस्या इतनी विकट हो उठी है कि आकड़ों के अनुसार चालीस प्रतिशत लोगों के पास न्यूनतम स्वच्छतावाला जल नहीं है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की यूनेस्को संस्था ने 1993 में 'विश्व जल दिवस' जैसी योजना से पूरे विश्व को जल–संकट के प्रति सचेत करने का प्रयास किया था। हिंदी की चर्चित लेखिका नासिरा शर्मा ने 'कुइयाँजान' के माध्यम से जल–संकट जैसी गम्भीर समस्या को अपने उपन्यास का विषय बनाया है। जल स्त्रोतों में नदियों का प्रमुख स्थान है। दुनियाभर में इन नदियों ने मनुष्य के जीवन–यापन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। आज इन नदियों के लिए व्यक्तियों, राज्यों और देशों के बीच में तनाव की स्थिति निर्माण हुई है। इसका मुख्य कारण है 'जल–विवाद'। इस समस्या की ओर लेखिका ने उपन्यास में एक अखबार के संपादकीय 'जल ही जीवन है' के माध्यम से चिंता व्यक्त की है, ''सारे विश्व में 261 प्रमुख नदियाँ एक से अधिक देशों से होकर गुजरती हैं। दुनिया के कुल नदी–जल–प्रवाह का 80 प्रतिशत इन्हीं में है। और जिन देशों से होकर ये गुजरती हैं उनमें संसार की 40 प्रतिशत जनसंख्या रहती है। पानी के कारण सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तनाव पनपते हैं, जैसे भारत और पाकिस्तान, भारत और बांग्लादेश, भारत और नेपाल, सीरिया और तुर्की के बीच स्वयं भारत में कर्नाटक और तमिलनाडू के बीच कावेरी नदी को लेकर तनाव की स्थिति पनप चुकी है।''[7] स्पष्ट है कि जल की समस्या बहुत विकट हो चुकी है। मनुष्य जल के बूंद–बूंद के लिए तरसने की लिए मजबूर हैं। वह दिन भी दूर नहीं है, जहाँ पानी के लिए युद्ध और महायुद्ध लड़े जाएँगे।

रत्नेश्वर सिंह के द्वारा लिखित उपन्यास 'रेखना मेरी जान' ग्लोबल वार्मिंग एवं प्राकृतिक आपदा की समस्या को आधार बनाकर लिखा गया है। आज हम इस बात को नकार नहीं सकते हैं कि ग्लोबल वार्मिंग की समस्या मानव की ही देन है। रत्नेश्वर सिंह ने प्रस्तुत उपन्यास में यही दिखाया है कि मार्च और मई महिने के बीच बांग्लादेश में जो भयंकर आंधी चलती है, उसे ही काल बैसाखी कहा जाता है। यही काल बैसाखी ग्लोबल वार्मिंग के रूप में बांग्लादेश में तब्दील हो जाती है। बढ़ते हुए समुद्री जलस्तर के कारण बांग्लादेश के साथ–साथ भारत के भी कुछ समुद्र तटवर्ती इलाके जलमग्न हो जाते हैं। प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से रत्नेश्वर सिंह यही चेतावनी देना चाहते हैं कि यदि ग्लेशियरों का बड़ा हिस्सा पिघल जाएगा तो ऐसे में अनेक देश समुद्र में समाहित होने के कगार पर खड़े होंगें। लेखक लिखते हैं– ''आज सुबह के अखबारों में यह चर्चा सुर्खियों में थी कि अब बांग्लादेश के पास बहुत कम समय बचा है। इस

बीच अधिकांश देशों ने बांग्लादेशियों को वीजा देना बंद कर दिया है। हवाई जहाज भी बंद हो गया है। भारत का कहना था कि वह एक करोड़ बांग्लादेशियों को यहां पनाह दे सकता है पर सारे बांग्लादेशियों को यहां देना संभव नहीं है।''[8]

मानव अपने निजी स्वार्थ के लिए पर्यावरण प्रदूषण फैला रहा है। ज्ञान–विज्ञान, अनुसंधान के नाम पर वातावरण को दूषित कर रहा है। हमारे धर्म ग्रन्थ भी धरती की रक्षा करने की सीख देते हैं। 'अपना मन उपवन' में अभिमन्यु अनंत ने इसका वर्णन कुछ इस तरह किया है। ''हमारे महान ग्रन्थों में कहा गया है कि हमें धरती की रक्षा करनी चाहिए। वातावरण को प्रदूषित होने से रोकना चाहिए। हमें चाहिए कि हम जहरीले तत्वों का विस्तार करने से अपने को रोकें, अनुसंधान और वैज्ञानिक और वैज्ञानिक प्रयोगों को विनाश का साधन न बनाएँ।''[9] यदि हम इसी प्रकार प्रकृति का विनाश करते रहेंगे, तो प्राकृतिक आपदाओं के माध्यम से प्रकृति अपना प्रकोप दिखाएगी।

निष्कर्षत:

कह सकते हैं कि पारिस्थितिकी को बचाना आज के विश्व की सबसे बड़ी चिंता बन गई है। आज पारिस्थितिकी का विनाश मानवीय सुख–सुविधाओं के लालच के कारण हो रहा है। आज हमें प्रकृति का संतुलन बिगड़ने से कई प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना पड़ रहा है। पारिस्थितिकी की चिंता को लेकर इक्कीसवीं सदी में पारिस्थितिकी विमर्श के रूप में कई उपन्यासों का सृजन हुआ है। पारिस्थितिकीय प्रदूषण के विरोध में इक्कीसवीं सदी के उपन्यासकारों ने अपनी आवाज बुलंद की है। इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासकारों ने पारिस्थितिकी प्रदूषण से संबंधित जिन प्रश्नों को समाज के सामने उठाया है। उस पर सभी बुद्धिजीवियों को गंभीरता के साथ विचार–विमर्श करना आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ :

१. पारिस्थितिक संकट और समकालीन रचनाकार – सम्पादक डॉ. उषा नायर, पृ. १२८.१२९
२. प्रार्थना में पहाड़ – भालचंद्र जोशी, पृ. १५.
३. प्रार्थना में पहाड़ – भालचंद्र जोशी, पृ. २९
४. रह गई दिशाएँ इसी पार – संजीव, पृ. १२८
५. रह गई दिशाएँ इसी पार – संजीव, पृ. १९४.१९५
६. वृन्दा – शान्ता कुमार, पृ. ०५
७. कुइयाँजान – नासिरा शर्मा, पृ. ८८
८. रेखना मेरी जान – रत्नेश्वर सिंह, पृ. ६४
९. अपना मन उपवन – अभिमन्यु अनंत, पृ. १८४.१८५

PRINCIPAL
Shivaraj College of Arts,Commerce
& D.S.Kadam Science College,
GADHINGLAJ (Dist.Kolhapur)